केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में लोक

अनुराग सिंह
हिन्दी विभाग
शासकीय महाविद्यालय, देवसर ,सिंगरौली

अमूर्तः–

काव्य का लोकजीवन से घनिष्ठ संबंध है। आधुनिक समाज में भौतिकवादी सोच ने एक बार पुनः लोक के दम को घुटने के लिये मजबूर कर दिया है। इस आर्थिक आंधी में जब अमीर और अमीर तथा गरीब और गरीब होता जा रहा है। तब ऐसी परिस्थिति में चिंतन कर पुनः लोक की प्रतिष्ठा करना ही साहित्य की सच्ची प्रांसंगिकता है। जो लोक जीवन में जुड़ाव पर ही सफल होती है। देश की परिवर्तित राजनीति, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिस्थितियां लोक जीवन को प्रभावित कर देती है। भारतीय साहित्य वैदिक काल से लेकर अब तक विविध रूपों में लोक मानस से प्रभावित दिखाई देतीं है। तभी तो मनीषियों नें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के स्वर के साथ लोक मानस के प्रति संवेदित दृष्टि का परिचय दिया है। काव्य और लोक का अन्योन्याश्रित संबंध है। लोक को साहित्य से अलग कर देने पर साहित्य महत्वहीन हो जाता है। काव्य में जन की बात करते हुये डॉ. मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि '' कविता में जनतंत्र केवल रूप के माध्यम से ही नहीं आता है। उसमें सच्चा जनतंत्र तब आता है जब कविता में जन हो, उसका जीवन हो, उसके जीवन की वास्तवीकतायें, समस्यायें,आशायें, और आकांक्षायें हों उसका सुख –दुखः हो और उसके जीवन की प्रकृति, संस्कृति और विकृति भी हों।''

कवि केदार का जनवादी स्वर नैतिकता से आप्लावित दिखाई देता है और 'दबे पांव वापस घर आया में' जाकर नैतिकता अपनी चरमावस्था को प्राप्त कर लेती है। कवि ने 'दीपक की छोटी बाती' और 'मंदी उजियारी' में ग्रामीण परिवेश के अभाव को स्वर दिया है। किसानों की खुशहाली को 'अबकी धान बहुत उपजा है' में रेंखांकित किया है। पूंजीपतियों की शोषक दृष्टि को 'उनके मेहनत की पूंजी' तथा 'बैंकों में धरते हैं' के रू॰ में कवि ने उद्‌धृत कर श्रमिक–कृषक जीवन के प्रति लगाव को व्यापकता से चित्रित किया है। साम्यवाद की जनतांत्रिक शासन प्रणाली में राजनीतिक के दो मुंहे चेहरे को ध्वस्त करने का पूर्ण प्रयास 'दहन और दाह' के रूप में चित्रित किया है। बिटिया के जबान होने पर श्रमिक–किसान की चिंता को रेखांकित करने में कवि ने प्रगतिवदी जन चेतना को शिखर पर बैठा दिया है। 'पैदा हुई गरीबी में' का दृष्य 'दीपक बुझा गरीबी में' जाकर समाप्त हो जाता है। कवि ने गरीबी का मार्मिक और भयावह दृश्य 'बाप बेटा बेचता है' में दिखाया है। 'गंदी कोठरीयो में हॉफती' में चहार दीवारी में कैद नारी की दशा तथा उससे मुक्ति की कामना का स्वर सफलता पूर्वक चित्रित किया तथा श्रमिकों और किसानों की चिंता 'रात जाने कैसी हो' के रूप में व्यक्त किया है। उस चिन्ता वह डरा सहमा सा दिखाई देता है। कवि ने भूख का दृश्य 'सौ गुनी बाप से अधिक मिली' के रूप में चित्रित कर सारी सीमाओं को तोड़ दिया है। कवि ने

'काटो–काटो करबी काटो' में जन जागरण का स्वर बुलंद किया तथा लोक जीवन की चेतना को 'जीवन से बढ़कर हिंसा क्या है' के माध्यम से जगाने का साहसिक कार्य किया है।

बीज शब्दः– काव्य, लोक, प्रगतिवाद,भौतिकवाद, किसान–मजदूर

"रोटी की चिन्ता में हर रात गुजरती है।
वेतन मिला नहीं / सेठों के बड़े तकाजे हैं,
कर्ज मांगता, किन्तु /बन्द घर के दरवाजे हैं,
बच्चों की चीखों से/ पूरी देह सिहरती है,
कई दिनों से घर की / चूल्हा-चक्की सूनी है,
अंतड़ी की ऐंठन, धड़कन से/ सीधे दूनी है,
और पेट की आग / आंख के बीच उतरती है।"

कवि नचिकेता की यह कविता लोक जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं को पूर्णता के साथ प्रकट करती है। समाज की इन परिस्थितियों उन्नीसवीं सदी के साहित्य को एक नई दिशा की ओर मोड़ दिया। प्रगतिशील चिन्तनधारा ने तत्कालीन साहित्यकारों को भी प्रभावित किया। कवियों ने विद्रूपताओं से संघर्षरत व्यक्ति को अपना वर्ण्य विषय बनाया। उन्होने अपनी प्रखर वाणी के माध्यम से अभावग्रस्त जीवन को हथौड़े के मन्द प्रहार से सजाने संवारने का कार्य आरम्भ किया। समाज में परिवर्तन की लहर हिलोरे मारने लगी। काव्य में लोक में एक नई चेतना का संचार किया जिसके कारण उसे आत्मावलोकन करने का अवसर मिला। तत्कालीन साहित्य उन्हें पिछड़ेपन और अशिक्षा का एहसास करा उससे निकल आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। उन्नीसवीं सदी के वर्गीय संघर्ष चेतना का यह शंखनाद सामाजिक जड़ताओं से मुक्ति का शंखनाद था जिसने एक नये जीवन दर्शन की आधारशिला रखी। अपने आप को पहचानने की शक्ति का विकास हुआ। साहित्य ने जनमानस की अन्तः चेतना को झकझोर कर रख दिया। समस्यापूर्ति का साहित्य) समस्याओं के निराकरण का उपाय तलाशने लगा। समाज में शोषितों और पीड़ितों के प्रति आदरभाव, दैन्यभाव से पीड़ितों की सहायता एवं नारी के प्रति सम्मान की भावना का उदय हुआ। प्रगतिशील चिन्तन धारा के प्रारम्भ में केदारनाथ अग्रवाल नागार्जुन, त्रिलोचन जैसे जनकवियों ने अपनी कटाक्षपूर्ण सरल, सहज भाषा में सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार कर लोक को अपनी साधना का विषय बनाया।

काव्य और लोक जीवन का घनिष्ठ संबंध है। लोकजीवन काव्य की जननी है। देश की बदलती हुई सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियां भी लोकमानस को प्रभावित करती रहती है। लोक की अवधारणा कोई नई अवधारणा नहीं है। अपितु यह प्राचीन काल से प्रचलित शब्द है। प्राचीन ग्रंथ से लेकर अर्वाचीन साहित्य तक अपने परिवर्तित रूपों में लोक शब्द अपनी सार्थकता प्रमाणित कर रहा है। प्राचीन साहित्य में लोक के पर्याय के रूप में जन शब्द का भी प्रयोग मिलता है। पूर्ववर्ती साहित्य में पडताल करें तो पता चलता है कि लोक व्यापक रूप में सम्पूर्ण मानव समाज के लिये प्रयुक्त होता रहा है। लेकिन समय और समाज की बदलती परिस्थितियों में लोक की व्यापकता संकुचित हो गई। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाय तो विविध कालों में लोक शब्द की अपनी अलग परिभाषा रही है। आधुनिक काल में एक ऐसा व्यक्ति जो सारे निर्माण की आधारशिला तो है लेकिन जिसकी अपनी कोई पहचान न हो ऐसा शोषित पीडित और दलित मानव लोक के रूप में साहित्य में अभिहित हुआ। विदूपताओं और विसंगतियों में जीवन यापन करने वाला व्यक्ति लोक या जन कहलाया। प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में लोक शब्द जन के रूप में चित्रित है।

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवं ।

विस्वामित्रस्य रक्षति ब्रहमेद भारत जन ।।[1]

वेद से लेकर गीता तक आते आते लोक साधारण जीवन यापन कर रहे आम व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को चित्रित करने के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुये लोक-संग्रह शब्द पर जोर दिया है।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।

लोकसंग्रहमेयाणि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ।।[2]

इसी प्रकार लोक शब्द को व्याख्यायित करते हुये डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय कहा है कि

"आधुनिक सभ्यता से दूर, अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली तथा कथित अशिक्षित एवं अपसंस्कृत जनता को लोक कहते है. जिसका आचार-विचार एवं जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है।"[3]

प्रख्यात आलोचक मैनेजर पाण्डेय ने लोक की जगह जन शब्द पर विशेष बल दिया। उनका माना है कि लोक जब से शासकीय क्षेत्र की भाषा बना तब से वह अपनी अर्थवत्ता को खो दिया है। अतः प्राचीन काल में प्रचलित जन ही सार्थक अर्थ की प्रतीति करा सकता है। उनका मानना है कि आम आदमी के सुख दुःख की अभिव्यक्ति ही साहित्य का मुख्य उद्देश्य है। लेकिन साहित्य सिर्फ समस्याओं का चित्रांकन करने वाला ही न हो बल्कि उसका मुख्य कार्य समाधान होना चाहिये।

"कविता में जनतंत्र केवल रूप में माध्यम से ही नहीं आता है। उसमें सच्चा जनतंत्र तब आता है जब कविता में जन हो, उसका जीवन हो उसके जीवन की वास्तविकताएं समस्याऐं आशाएं आकाक्षाऐं हो, उसका सुख-दुःख हो और उसके जीवन की प्रकृति संस्कृति और विकृति भी हो।"[4]

इस प्रकार लोक शब्द व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन वृत्त को अपने में समाहित करके चलता है। लोक को अभिव्यक्त करने में सशय की स्थिति नहीं होनी चाहिये। इस स्थिति में लोक अपने वास्तविक रूप में साहित्य में नहीं आ सकता है। प्रगतिवाद की वृहत्त्रयी ने लोक जीवन को गहराई से अनुभव किया है। उन्होंने लोक को जिया है क्योंकि जिया हुआ ही जीवन की वास्तविकताओं से जुड़ता है। साहित्य में सच्चा लोक वही ला सकता है, जिसके अन्दर किसी प्रकार की हिचकिचाहट न हो तथा जिसका उस जीवन से निकटतम सम्बन्ध रहा हो। यह जाके पैर न फटी बिवाई सो का जाने पीर पराई की तरह होता है। नागार्जुन कहते हैं –

"जनता हमसे पूछ रही है. क्या बतलाऊ।
जनकवि हूँ मैं साफ कहूंगा, क्यों हकलाऊ ।।"[5]

आगे नागार्जुन कहते हैं कि इस संसार में अपनी व्यथा का बखान तो सब कर लेते हैं लेकिन समाज की चिन्ता किसी को नहीं। इस प्रकार की स्वार्थी मानसिकता का व्याख्यायित करने में जन कवि कभी भी नहीं हिचकिचाते हैं, चाहे वह कोई भी हो। मासी सीकरी सो क्या काम कि तरह शहशाहों को भी खरी-खोटी सुना पाथेय बना चलता रहता है।

कांग्रेस जन तो तेने कहिये,
जे पीर आपणी जागे ।
पर दुःख में अपना सुख साधे,
दया भाव न जाने रे।।[6]

केन कूल की काली मिट्टी का खड़ी फसलों की लाठी लेकर कालरात्रि में रखवाली करने वाले कवि केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी सशक्त लेखनी के माध्यम से भोगे हुये यथार्थ को समाज और राष्ट्र का यथार्थ बनाकर पटल पर प्रस्तुत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। सामाजिक जीवन कवि को आंदोलित करना रहता है। कवि का मानना है कि कुरीतियों से लोक का कल्याण नहीं किया जा सकता है। लोगों की भूख इससे नहीं मिटाई जा सकती है। वे यथार्थ को आदर्श का जाना नहीं पहनाते हैं। बल्कि उसे उसी रूप में सामने रख देते हैं।

कविताओं में जो मैंने लिखा,

उसे मैंने/ अपने में आप,

और दूसरों के साथ जिया,

फिर उस जिये को / जीवन्त शब्दों से / सम्प्रेषित किया’’[7]

कवि केदार की आत्मपीडा की पुष्टि में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कहते हैं ‘‘ इस पीड़ा के देश को वही जानता है जिसे सहना पड़ा’’ [8]

इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता है। जीवन की इस संघर्ष कथा में ही सम्पूर्ण दिनचर्या की परिणति देखने को मिलती वह जिस व्यवस्था में जन्म लेता है उसी मे साना, स्वप्न देखना और उसी में जगना उसके जीवन का उद्देश्य हो जाता है। जग की इस यातना में कवि स्वर से स्वर मिलाते हुये लोक की पीड़ा को चित्रित करता है

‘‘चैन से है भैंस सर में

विश्व दुःख से से रहा है / अश्रु से मुख धो रहा है।

यातना ही यातना है / आज जग के प्रति विवर में।"[9]

कवि केदारनाथ अग्रवाल प्रकृति में होने वाले परिवर्तन को जीवन के परिवर्तन के रूप में देख रहे हैं। बसंत के आगमन से पुरानी रूढिया मान्यतायें पतझड़ के साथ पलायन कर गई है तथा अन्य जन मानस के चेहरे पर किसलय के समान खुशियां दिखाई देने लगी हैं। वह प्रकृति के इस प्रकार लहक उठने से कोयल की तरह पंचम स्वर में गान करने लगा है। जो कवि की उन्मुक्तता के साथ जन जीवन की उन्मुक्तता का परिचायक है। कवि का मानना है कि मानवता अब मानसिक गुलामी से मुक्त हो रही है-

"पात पुरातन लेकर / पतझड चला गया।

प्रिय बसंत अब आया, दण्ड देहयारी बिटयों का।

दल किसलय से हरसाया फूला, महका,

लोकतंत्र को भाया, कविता कोकिल ने, छन्दों में गाया।‘‘ [10]

जीवन भाववादी और भौतिकवादी जीवन दर्शन का रूप होता है। जिसने भाववादी दर्शन एक ऐसा पक्ष है, जिसमें निराशा को निराशा ही बना रहने दिया जाता है। इसे भाग्यवादी भी कहा जा सकता है। इसमें शासन व्यवस्था कुछ लोगों की मुट्ठी में होती है। जिसे हम परम्परावादी व्यवस्था भी कह सकते हैं दूसरी ओर भौतिकवादी जीवनदर्शन में

शासन सत्ता पर सबका अधिकार होता है। शिक्षा स्वास्थ्य और रोजगार के अवसर सब के लिये समान होते हैं। वर्गीय चेतना समाप्त हो जाती है। इसमें एक ऐसे तंत्रीय ढांचे का विकास होता है जो सत्य की ओर प्रेरित करता है। कवि का मानना है कि इसी से मानवता का कल्याण संभव है।

"वह प्राकृत सृष्टि और परिकल्पनात्मक सृष्टि के समकक्ष एक ऐसी क सृष्टि दे सके, जो वैज्ञानिक सत्य से संबद्ध हो और किसी भी रूप में वर्गीय न हो और नाना प्रकार की कवियों अधविश्वास और निजी अभिरूचियों से मुक्त हो मानवीय चेतना को ऐसे ही विकसित करके सत्तार की आम जनता सुखी और समृद्ध हो सकती है।"[11]

कवि ने दीपक की छोटी बाती को मंदी उजियारी के नीचे में ग्रामीण परिवेश के अभाव को रेखांकित किया है। उनकी भावनायें लोक जीवन पर टिकी है। वह छत विहीन, दीवाल रहित लोगों के चित्र खीचने में नहीं हिचकता है। ग्रामीण श्रमिक अपनी जुबानी कहता है कि लोग पास और ककर पत्थर की छत बनाते हैं। हमारी छत स्वायं आकाश है, जिसके नीचे आराम से घास रूपी मखमल के बिछोने पर सोता हूँ, टिमटिमाते तारे रूपी बिजलियों के प्रकाश में सारे कार्य निपटाता हूँ तथा दीवारे थे- पहाड़ है। कवि केदारनाथ अग्रवाल एक तरफ सामाजिक अभाव का यथार्थ चित्र खीचते हैं। दूसरी ओर ग्रामीण लोक जीवन के मोगी श्रमिकों के उन्मुक्त उल्लास को भी रेखांकित किया है:-

"हम यहीं रहते है, न पूछो कहाँ ? मनस्वी आकाश के नीचे,

नदिया पहाड़ों के बीच, दुधार नदियों के साथ,

खेलते, कूदते, हंसते-गाते, जीते, कोई है,

जो हमारी, बराबरी कर सके।"[12]

कवि जीवन के एक पक्षीय चित्रण में ही विश्राम नहीं लेता है। वह जीवन के सुख-दुःख दोनों पक्षों का सफल और सूक्ष्म पर्यवेक्षण करता है। वह अनावों पर दुःखी होता है तो खुशहाली में प्रसन्नता भी व्यक्त करता है। वे किसान को धरती का असली भोक्ता मानते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने उनके स्वर से स्वर मिलाते हुये कहा है कि :-

"केदार की चेतना मूलतः किसान की चेतना है प्रेमचन्द की तरह से उनका जन्म भी किसान परिवार में हुआ लेकिन अपनी सहज सहृदयता के कारण दोनों ही किसान जीवन में घुल-मिल गये।"[13]

कवि आजादी के बाद भगौता और दौआ जैसे ग्रामीण लघु उद्यमियों की गांधीवादी नीतियों से प्रभावित दिखाई देते हैं। उन्होने जन चेतना का अनूठा उदाहरण एक श्रमिक को उद्योग का मालिक बनाकर प्रस्तुत किया है। निःसंदेश देश की प्रगतिशील 'भावधारा का विकास यहां पर दिखाई दे रहा है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता किसान, लुहार और मेहनतकश कोई पुरातनपंथी आदमी नहीं बदल रहे जगाने का नया मनुष्य है।"[14]

देश की आजादी के बाद लोकतंत्र की स्थापना और पंचवर्षीय योजनाओं का गठन हुआ। कवि को शासन के ग्रामीण विकास की नीतियों का कागजी कार्यवाही तक सीमित रह जाना खलने लगता है। राजनेताओं द्वारा भूखोद्धार के नारे लगाये जा रहे हैं और आजादी के चौतीस साल बाद भी उन घरों में भूख कायम रही। तरह-तरह की लोक लुभावनी नीतियों का निर्माण हो रहा है।

मोटे-मोटे संसदीय पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में भूख के निदान के उपायों को अंकित किया जा रहा है। लेकिन जनता अपने पेट में कूदते चूहों को मारने के उपाय में अभी भी उसी तरह संलग्न रात दिन एक कर रही है। संसदीय पन्नों पर लगी फफूँद का दश झेलती जनता का चित्र कवि केदार ने इस प्रकार खींचा है :-

"धुआई बिटिया, अंसुआई बैठी,

कोठे में, देखती है, पेट के पालने का

हो रहा आतुर उपचार, सुनती हुई,

भूखोद्धार का मैत्रोच्चार।" [15]

एक ओर अराजक नेता अपनी कुशल विदेश नीति के कारण अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यश का विंढोरा पीट रहे हैं तो दूसरी और देश के अंदर मानवता की भूख की आग में जल रही है। जगह-जगह आत्महत्याएं हो रही है। श्रमिक भूख से मर रहा है। आजादी के 65 साल बाद भी किसान आत्महत्याएँ कर रहा है। दिशाहीन रोजगार का आकाक्षी युवा शासन की नीतियों के कारण आत्मदाह कर रहा है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में घटित होने वाली नन्दीग्राम और ददरी की घटनायें कवि की लोक साधना की और सहसा ध्यान आकृष्ट करती है –

देश के भीतर दहन और दाह है,

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, वाह वाह है।"

संविधान के पन्नों में अंकित श्रमिक किसान और युवा धूलभरी आंधियों में घुटन से जन्म और मृत्यु की दूरी नाप रहा है। कवि के शब्दों में-

"आतकित, हांफते हांफते हम,

संविधान की शरण में, धूल फांकते हैं.

मौत की दूरी नापते हम।“[16]

इतना ही नहीं कवि श्रमिक और किसान को विविध कोनों से देखता है। कभी वह भूख से तड़पता है, कभी हथौडा चलाता है, कभी रूई चुनकता है, तो कभी खेत में हसिया चलाता है और तो और कभी वह सामूहिक शक्ति के साथ जागृत भी दिखाई देता है। आजादी के बाद भी सामती नीति के पोषक नेता एक तरफ उनके मनोबल को ऊंचा उठाते हैं, तो दूसरी और उनके उठे हुए हाथों को काट भी लेते हैं। शोषण मुक्त समाज की आकांक्षा के पुजारी श्रमिकों और किसानों को कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है :-

“भूख का भाषण हुआ अब, दूध का, व्याकुल विलाप,

पेट खाली रहा खाली, और मैं भी चुप रहा।

इस त्रासदी को सह गया, बेहाल होकर रह गया।"[17]

अकाल की यह व्यथा किसानों-श्रमिकों को हिलाकर रख देती है। जीवन निःश्वास होने लगता है। बच्चों का बिलखना पत्नी का सिंदूर, बिटिया का ब्याह उसे रातो की नींद से वंचित कर देता है। जीवन की आशा निराशा में बदल जाती है। पराजित दुर्ग की तरह दिखाई देने लगता है। उसका हिलना-डुलना वृक्ष की तरह अडिग हो जाता है। आंखों के सामने बादल पूरे पेड़ को आच्छादित कर लेता है। कवि ने इस दृश्य को अपने आसपास देखा और यथार्थ बोध की अभिव्यक्ति इस प्रकार की :-

"जवान क्या हुई गरीब दास की बिटिया,

बाढ़ आ गई जैसे, मटियार नदी में रातों रात,

हुलास से हुमसे, हरहराते मोतियार पानी की

"छाप लिया उसने प्यार के प्यासे,

आम और जामुन के पेड़ों को, कमर की ऊंचाई तक ।"[18]

कवि केदारजी ने जहां एक ओर गरीबी का सजीव चित्रण किया है वहीं दूसरी ओर गरीबी के पीछे का मुख्य कारण अपनी वह चिडिया जो में कर्महीनता को माना है। लोक की इस दुर्दशा का कारण उसकी कर्म विमुखता है। इस संसार में समस्त वस्तुयें उपलब्ध करा दी जाये, लेकिन कर्म को उससे अलग कर दिया जाय तो संसार का होना या न होना किसी काम का नहीं है। व्यक्ति की महानता का उसकी प्रगति और उन्नति का आधार भी यही कर्म ही है। कवि की

इस कविता की चिडिया जीवन की आजादी की प्रतीक रूप चिड़िया है। लेकिन भाग्यवाद नहीं कर्मवाद को आधार मानकर चलने वाली चिड़िया है।

“चिडिया स्वतंत्रता के अर्थ को अपने पंखो और उड़ान से स्पष्ट करती है। आजादी के अर्थ को विस्तार देती है। किसी भी कवि की कविताओं में बार-बार भरी जाने वाली चिडिया की उड़ान मनुष्य की मुक्ति के प्रतीक में बदलती दिखाई देती है|[19]

यह वह चिड़िया है जो जुण्डी (ज्वार) के एक-एक दाने पर चोंच का मंद प्रहार कर कर्मशील अपने जीवन को सजाने और संवारने का कार्य कर रही है। अपनी भाग्य रेखा को कर्म के माध्यम से मिटाने का सफल प्रयास कर रही है। कवि का मानना है कि भूख का राग अलापने से जीवन नैया को पार नहीं लगाया जा सकता है। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। इस धरती पर किसी एक का अधिकार नहीं है। इस संसार में आने के बाद उसका सदकर्म ही उसे उसका वास्तविक अधिकारी बनाता है। कवि की वागर्थ में उधृत कविता

"वह चिड़िया जो, चोंच मारकर दूध भरे जुण्डी के दाने,

रूचि से, रस से खा लेती है, वह छोटी संतोषी चिडिया,

नीले पंखों वाली में हूँ, मुझे अन्न से बहुत प्यार है|"[20]

इन पंक्तियों में कवि ने एक तरफ जहां कर्म से बदलते जीवन को चित्रित किया है। वहीं दूसरी तरफ अपने उपार्जन पर संतोष को भी व्यक्त किया है। उत्तर आधुनिक समाज में अन्न की जगह धन का जो मोह बढ़ा है। उस पर भी कवि ने चिन्ता व्यक्त की है। मुझे अन्न से बहुत प्यार है के माध्यम से उस व्यवस्था पर विश्वास जागृत किया है। क्योंकि लगातार किसी चीज को हम तिरस्कृत करते रहें तो धीरे धीरे समाप्त हो जाती है। तो अन्न के प्रति उपेक्षा का भाव ही हमें अभावों की ओर ले जाता है। इस प्रकार अन्न से अलगाव के क्षण में कवि ने अपनी कविता के माध्यम से मूल्यबोध का संकेत किया है। आधुनिक सभ्यता में वह चिड़िया जो मूल्य की प्रतिष्ठापक है जो निरंतर कर्मशील हो आगे बढ़ने का संदेश दे रही है। गरीबी से निकलने का यही मात्र एक उपाय है। कवि ने ‘जहरी’ कविता में श्रमिक किसान की बिटिया का मार्मिक चित्र खींचा है। गरीबी उसके जीनव का आय हो जाती है। उसका सम्पूर्ण क्रिया व्यापार गरीबी को समर्पित हो जाता है |:-

“पैदा हुई गरीबी में, पाली गई गरीबी में, ब्याही गई गरीबी में,

माता हुई गरीबी में, हसिया लिया गरीबी में,

सब दिन पिसी गरीबी में.............. दीपक बुझा गरीबी|”[21]

गरीबी की भयावहता ने इंसानों को नर का व्यापारी बना दिया है। कवि की बाप बेटा बेचता है कविता समाज की सारी मर्यादाओं को छोड़ देती है। लेकिन फिर भी बापू के बंदरों के कान बहरे ही दिखाई देते हैं। भूख और बदहाली श्रमिकों किसानों को (अमानवीय बना देती है।

बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर

धर्म, धीरज, प्राण खोकर हो रही अनरीति वर

राष्ट्र सारा देखता है।"[22]

इस प्रकार 'मात खाती है' लेकिन मात देना नहीं चाहती है का तात्पर्य है कि घृणित मानसिकताओं को सहर्ष स्वीकार करती हुई भी उसका प्रतिकार नहीं कर पा रही है। यहां पर प्रेमचन्द की ठाकुर का कुआ कहानी में ठाकुर साहब की घर की औरते जब रात को पानी भरने के लिये कुए पर जाती है तो आपस में बात करती हुई कहती है कि हम तो उनकी नौकरानियां है क्योंकि हमें उसके बदले में तन ढकने के लिये कपड़ा और दो जून का भोजन देते हैं और आगे कहती है कि यदि इतना काम हम किसी अन्य के घर में करती तो यह एहसान भी मानता और इससे ज्यादा आराम से रहती। इस प्रकार की बिना ग्रस्त परिवेश में रहकर भी वह उसका प्रतिकार नहीं करती है। गांव का महाजन कविता में कवि ने महाजनी सभ्यता की आग में झुलसते समाज का यथार्थ चित्र बीचा है। उस समय महाजनी सभ्यता चरम पर थी। सूदखोर व्यभिचारी महाजन मोटा होता जा रहा है और जनता ऋण से तदती जा रही है।

"सूद लपेटे कर्जे की ग्रामीणों को,

मुक्ति अभी तक नहीं मिली है इन दोनों को,

इन दोनों के ऋण का रोकड काण्ड बड़ा है।

अब भी किन्तु अछूता शोषण काण्ड पड़ा है।"[23]

इस प्रकार कर्जे से आकण्ठ डूबे किसान की दशा को देखकर कवि जीवन की आस छोड़ देता है। उसे चिन्ता की रेखायें निगलने लगती हैं:-

"मेरा मन ऐसी शाम देख कर सिहरता है।

रात जाने कैसी हो, मेरा मन करता है।।"[24]

जन कवि केदार जी का मानना है कि यह धरती किसान की है। किसानों को दिन रात श्रम करने के बाद भी उसका श्रम-फल नहीं मिल पाता है। किसान का बेटा बाप की मृत्यु के बाद पैतृक सम्पत्ति के रूप में क्या पाता है। इसका हृदय विदारक दृश्य कवि केदार जी ने इस प्रकार सीधा है:-

जब बाप मरा तब क्या पाया, भूखे किसान के बेटे ने,

घर का मलबा, टूटी खटिया, कुछ हाथ भूमि वह भी परती,

चमरौधे जूते का तल्ला, बनिया के रुपयों का कर्जा,

जो नहीं चुकाने पर चुकता, बस यही नहीं जो भूख मिली.

सौ गुनी बाप से अधिक मिली।" [25]

यहां पर कुछ हाथ भूमि यह भी परती" में कवि किसान की इस दशा का कारण शायद कर्म से पलायन करने की स्थिति के रूप में माना है। पूर्ववर्ती युग की प्यासी मानसिकता ने समाज को इस प्रकार अपने आगोश में ले लिया है कि वह वास्तविक कर्तव्य से विमुख हो गया और विडम्बना ग्रस्त जीवन जीने को मजबूर है। कवि केदार जी जागरण का शंखनाद करते हुये उस जीवन की सार्थकता को समझाने का प्रयास करते दिखाई दे रहे हैं -

"काटो काटो काटो करबी, मारो मारो मारो हसिया,

हिंसा और अहिंसा क्या है, जीवन से बढ़ हिंसा क्या है।"[26]

इस प्रकार जनकवि केदारनाथ अग्रवाल का मनुष्य पर अगाध विश्वास है।। श्रमिक- किसान नारी जीवन की विडम्बनाओं के वास्तविक रेखांकन के साथ कवि ने समय-समय पर जागरण के स्वर को भी मुखरित किया है। श्रमिक किसान इस धरती के असली भागीदार हैं। राजनेताओं की कुटिल नीतियों पर भी प्रहार के साथ ग्रामीण महाजनी सभ्यता पर वज्रपात किया है। लोक जीवन की नैतिकता और अनैतिकता को रेखांकित करने में महारथ हासिल की है। कवि का यह लोक चेतना परक स्वर उनको अग्र पंक्ति में खड़ा कर देता है। निःसंदेह यह उनकी सहजता और सरसता तथा गहन आत्मीयता का परिणाम है।

संदर्भ सूची

1- (ऋग्वेद - 3/53/12)

2- (गीता 3/20)

3- (लोक साहित्य की भूमिका पृष्ठ 11. साहित्य भवन इलाहाबाद 2008)

4- (सं गौरीनाथ-बया जुलाई-सितम्बर 2011 पृष्ठ 24)

5- (सं गौरीनाथ-बया पृष्ठ 24)

6- (वही (24))

7- (केदारनाथ अग्रवाल, बोले बोल अबोल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 141)

8- (बया जुलाई-सितम्बर 2011 पृष्ठ 29)

9- (केदारनाथ अग्रवाल / जो शिलायें तोड़ते है, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 124)

10- (केदारनाथ अग्रवाल, खुली आंखे खुले डैने, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 52)

11- (केदारनाथ अग्रवाल- बोले बोल अबोल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, -पृष्ठ 9-10)

12- (केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते है, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 138)

13- (डॉ.रामविलास शर्मा,प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद,पृष्ठ 47)

14- (मधुछंदा , श्रम का सौंदर्यशास्त्र और केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 110)

15- (केदारनाथ अग्रवाल, बोले बोल अबोल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 24)

16- (केदारनाथ अग्रवाल, बोले बोल अबोल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 118)

17- (केदारनाथ अग्रवाल, खुली आंखे खुले डैने, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 94)

18- (वही, पृष्ठ 207)

19- (एकांत श्रीवास्तव,बागर्थ, जुलाई 2011, पृष्ठ 9)

20- (एकांत श्रीवास्तव,वागर्थ, जुलाई 2011, पृष्ठ 7)

21- (केदारनाथ अग्रवाल जो शिलायें तोड़ते है, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 135)

22- (पृष्ठ 117)

23- (केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते हैं, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ 84)

24- (वही पृष्ठ 156)

25- (केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृष्ठ 78)

26- (वही पृष्ठ 77)